पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञों की नियत

पं. भगवद्दत

"वैदिक पथ" (हिण्डौन सिटी)
वर्ष - ८, अंक - ५, दिसम्बर २०१५
(पृ. १० – ३२)

Scanned by CamScanner

पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञों की नीयत

—प्राच्यविद्या के प्रख्यात विद्वान् **पं० भगवद्दत्तजी** (१८९३-१९६८ ई०)

[पण्डित भगवद्दत्त जी एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में भारत के सांस्कृतिक गगन को लगभग पाँच दशक तक अपने प्रकाश से समालोकित करते रहे। जिस समय पाश्चात्त्य झंझावात भारतीय इतिहास एवं संस्कृति को धूमिल करने के लिए उद्यत था, संयोगवश उसी समय इस प्रकाश-पुञ्ज का उदय हुआ। वैदिक आदित्य ऋषिवर दयानन्द सरस्वती से सत्प्रेरणा-प्रकाश पाकर पं० भगवद्दत्त जी भारतीय मूल्यों की प्रस्थापना के लिए प्राणपण से कटिबद्ध हो गये। उन्होंने भारतीय इतिहास-संस्कृति-धर्म-दर्शन-विज्ञान के क्षेत्रों में प्रतिमानों की प्रस्थापना की। भारतीयता के प्रति उनके हृदय में अप्रतिम ज्वाला धधकती थी। उन्होंने अपनी लौह-लेखनी से भारतीय वाङ्मय की जो सेवा की है, उसके लिए वे चिर स्मरणीय रहेंगे। पं० भगवद्दत्त जी का जन्म २७ अक्टूबर १८९३ को अमृतसर में हुआ था। २२ नवम्बर १९६८ को पचहत्तर वर्ष की आयु में वे दिवङ्गत हुए। पं० भगवद्दत्त जी का प्रमुख कार्यक्षेत्र प्राचीन भारतीय इतिहास का अनुसन्धान और भारतीय दृष्टि से उसका प्रामाणिक लेखन था। उन्होंने अनुसन्धान की आधुनिकतम रीति का अनुसरण किया। वे अपने समय के विश्व के प्रमुख शोधकारों, चिन्तकों एवं लेखकों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे और उनके साथ विचार-विनिमय करते रहते थे। उन्होंने उन पाश्चात्त्य लेखकों एवं उनका अनुसरण करनेवाले भारतीय विद्वानों से लोहा लिया, जो जान-बूझकर भारतीय मूल्यों की उपेक्षा एवं अवमानना करते थे। वैदिक वाङ्मय, विशेषतः इतिहास के क्षेत्र में उनका अनुसन्धान असाधारण कोटि का था। उनके वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों और वेदभाष्यकारों के सम्बन्ध में किये गये शोधकार्यों की प्रशंसा विश्वभर में हुई है। पुराणों का अवगाहन उन्होंने ही भारतीय शोधकारों में इदं प्रथमतया किया था। ऋषि दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर उनकी गम्भीर आस्था थी। इस क्षेत्र में भी उनका योगदान असाधारण एवं अद्वितीय है। वे अपने सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति में भारतीय संस्कृति-इतिहास-धर्म-विज्ञान-शिल्प-राजनीति-अर्थशास्त्र के प्रति आस्था जगाने का प्रबल प्रयास करते थे। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक उन्हीं से प्रेरणा पाकर अनुसन्धान कार्य में प्रवृत्त हुए थे।

पं० भगवद्दत्तजी ने दर्जनों ग्रन्थों का प्रणयन एवं सम्पादन किया था। छोटे-बड़े लेखों और निबन्धों की गणना सुलभ नहीं है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—भारत वर्ष का बृहद् इतिहास (दो भाग), वैदिक वाङ्मय का इतिहास (तीन भाग), निरुक्त भाषा भाष्य, वेदविद्या निदर्शन, भाषा का इतिहास,

Scanned by CamScanner

ऋग्वेद पर व्याख्यान, भारतीय संस्कृति का इतिहास और ऋग्-मन्त्रव्याख्या।

*'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास' में पं० भगवद्दत्त जी ने एक अध्याय 'भारतीय इतिहास की विकृतियाँ' लिखा है। पण्डित जी के मित्रों और प्रशंसकों ने आग्रह किया कि इस अध्याय को विस्तृत रूप देकर अंग्रेजी में ट्रैक्ट के रूप में छापा जाय। पण्डित जी ने उनके आग्रह को स्वीकार करके 'Western Indologists : A Study in Motives' नामक ट्रैक्ट का प्रकाशन किया। इस ट्रैक्ट का हिन्दी अनुवाद ब्र० देवदत्त आर्य ने किया तथा उसका संशोधन करके सम्पादित रूप पाणिनि महाविद्यालय (बहालगढ़, सोनीपत) के आचार्य डॉ० विजयपाल विद्यावारिधि ने पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया। **'वैदिक पथ'** के सुधी पाठकों की सेवा में हम इसे प्रकाशित कर रहे हैं, जिससे वे भारतीयविद्याविद्-पश्चिमी विद्वानों के उद्देश्यों से भलीभाँति अवगत हो सकें—**सम्पादक**]*

भारतवर्ष और उसके प्राचीन साहित्य में पाश्चात्त्यों की अभिरुचि—

संवत् १८१४ में प्लासी युद्ध हुआ और उससे भारत का भाग्योदय निरुद्ध हो गया। बंगाल अंग्रेजों की प्रभुसत्ता में आ गया। सं० १८४० में विलियम जोन्स को अंग्रेजी उपनिवेश फोर्ट विलियम का प्रधान न्यायाधीश नियुक्त किया गया। उसने संवत् १८४६ में विख्यात कवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'शाकुन्तल' (विक्रम पूर्व चतुर्थ शताब्दी) का और १८५१ में मनुस्मृति का अंग्रेजी में अनुवाद किया और उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात् उसके कनिष्ठ सहयोगी सर हेनरी थामस कोलब्रुक ने संवत् १८६२ में 'वेदों के विषय में' एक लेख लिखा।

विक्रम संवत् १८७५ में अगस्ट विल्हेम वान श्लेगल जर्मनी के बान विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्रथम प्राध्यापक नियुक्त हुआ। फ्रेड्रिक श्लेगल उसका भाई था। उसने संवत् १८६५ वि० में 'हिन्दुओं का ज्ञान और भाषाएँ'[१] शीर्षक से एक पुस्तक लिखी। दोनों भाईयों ने संस्कृत के प्रति अत्यन्त प्रेम दर्शाया। एक अन्य संस्कृतज्ञ हर्न विल्हेम् वान् हम्बोल्ट, अगस्ट श्लेगल का सहयोगी बना, जिसके भगवद्गीता के संस्करण ने उसका ध्यान उसके (संस्कृत) अध्ययन की ओर आकर्षित किया। संवत् १८८४ में उसने अपने मित्र को यह कहते हुए लिखा—'सम्भवतः यह गम्भीरतम और उत्तम वस्तु संसार को दिखाने योग्य है।' उसी समय प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपनहार (संवत् १८४५-१९१७ वि०) ने संयोगवश उपनिषदों का लैटिन अनुवाद (१८५८-१८५९ वि०) पढ़ा, जिसको फ्रेंच लेखक आड्क्वचिल ज्यू पेरों (१७८८-१८६२ वि०) ने राजकुमार दाराशिकोह (१७२२ वि०) कृत 'सिर्रे-अकबर'—महान् रहस्य—नामक फारसी अनुवाद से अनूदित किया था। वह उनके दर्शन से इतना प्रभावित हुआ कि उसने

Scanned by CamScanner

उनको 'सर्वोत्तम मानव बुद्धि की उपज'[२] कहा और 'लगभग अतिमानव अवधारणाएँ'[३] माना। उपनिषदों का अध्ययन उसके आत्मा को प्रेरणा का स्रोत और सुख का साधन था। और इस विषय में लिखते हुए वह कहता है कि—''यह सन्तोषजनक और उन्नति-कारक अध्ययन (मूलपाठ के अपवाद सहित) है, जो संसार में सम्भव है। यह मेरे जीवन के लिए शान्तिदायक है और मृत्यु के लिए भी शान्तिदायक होगा।''[४] यह सुविदित है कि उपनिखत् (उपनिषद्) सदा उसकी मेज पर खुली रखी रहती थी और शयन के लिये जाने से पूर्व वह इसका नियमित अध्ययन करता था। वह कहता था कि—संस्कृत साहित्य का प्रकाशन 'हमारी शताब्दी का सर्वोत्तम उपहार' है, उसने भविष्यवाणी की थी कि—उपनिषदों का दर्शन और ज्ञान पश्चिम का प्रिय धर्म (विश्वास) बनेगा।

इस अभिरुचि का परिणाम—इस प्रकार के लेखन ने जर्मन विद्वानों को संस्कृत अध्ययन के लिये अधिकाधिक आकृष्ट किया और उनमें से अनेक विद्वान् भारतीय संस्कृति को अत्यन्त आदर से ग्रहण करने लगे। प्रा० विण्टरनित्ज ने उनके आदर और उत्साह को निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया है।

''जब पाश्चात्त्य जगत् में सर्वप्रथम भारतीय साहित्य का परिचय हुआ, तो लोग भारत से आने वाली प्रत्येक साहित्य कृति को अति प्राचीन काल की मानने के लिये प्रवृत्त हुए। वे भारत को मानव जाति या कम से कम मानव सभ्यता का 'पालना' सा समझने लगे।''[५]

यह प्रभाव बिना किसी निमित्त के स्वाभाविक था। यह सत्य पर आधृत था और इसमें कोई पक्षपात का तत्त्व नहीं था। भारतवर्ष के ऋषियों द्वारा प्रदत्त ऐतिहासिक तथ्य सत्य और अविच्छिन्न परम्परा पर आधृत थे। उनके दार्शनिक सिद्धान्त जीवन के स्रोत और रहस्यों में गहराई तक पैठे हुए थे और शाश्वत मूल्यों के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे। जब पश्चिमी लोगों ने प्रथम बार उनको जाना तो बहुत से उदार विद्वान् उनकी आश्चर्यजनक यथार्थता और गम्भीर विद्वत्ता से अत्यधिक प्रभावित हुए और किसी वर्ण या जाति के विचारों से प्रभावित न होकर वे अपनी प्रशस्तियों में उदार थे। ईसाई देशों के ईमानदार लोगों की इस उत्साहयुक्त प्रशस्ति ने यहूदी और ईसाई प्रचारकों के दड़बों (संकीर्ण मस्तिष्कों) में कम्पन्न उत्पन्न कर दिया। वे जैसे अपने धर्मग्रन्थ और परम्पराओं के वास्तविक आगमन के विषय में अनभिज्ञ थे, वैसे भारतवर्ष के धर्मग्रन्थ एवं परम्पराओं के विषय में भी। वे केवल कट्टर पालीय ईसाईयत के आदेशों का अनुसरण करते थे, जिसने उनको अन्य मान्यताओं के प्रति असहिष्णु बना दिया था।[६]

हमारे निष्कर्ष की यथार्थता हेन्रिश जिमर की निम्नाङ्कित टिप्पणी से

Scanned by CamScanner

प्रमाणित की जा सकती है—

''वह (शोपनहार) पाश्चात्त्य लोगों में प्रथम व्यक्ति था जिसने अनुपम शैली से उस यूरोपीय ईसाई वातावरण के विशाल मेघ विस्फोट में यह भाव अभिव्यक्त किया।''[७]

कट्टर ईसाई और यहूदी अपने समान मान्यता न रखने वालों के प्रति कितनी प्रतिशोध की भावना से युक्त हैं, यह ''रिलिजन ऑफ द सेमीट्स'' के लेखक और फ्री चर्च कॉलेज अबर्डीन में हिब्रू के प्राध्यापक राबर्टसन स्मिथ (१८४६-९४ ई०) के भाग्य से स्पष्ट प्रतीत होता है। अपनी वैज्ञानिक अनुसन्धान की निष्कपट और निर्भीक अभिव्यक्ति के कारण उसको जो दण्ड मिला, वह लेवी स्पेन्स के द्वारा निम्नलिखित शब्दों में सुवर्णित है।

''बाइबल पर विश्वकोश में प्रदत्त परम्पराओं से मुक्त स्वरूप वाले लेख से परम्पराओं से विरुद्ध मान्यताओं के कारण उसके ऊपर अभियोग चला जिस से वह मुक्त हो गया। किन्तु अंग्रेजी विश्वकोश (१८८०) में अगले लेख 'हिब्रू लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर' [हिब्रू भाषा और साहित्य] से उसको कॉलेज की प्राध्यापकी से मुक्त कर दिया गया।''[८]

प्राथमिक कारण

यहूदी और ईसाई पक्षपात—प्राचीन यहूदी आर्यों के वंशज थे। उनकी मान्यताएं वही थीं जो आर्यों की थीं। जिस प्रथम मनुष्य को वे आदम कहते थे, वह मानव जाति का जन्मदाता ब्रह्मा था। ब्रह्मा के एक पर्यायवाची 'आत्मभू' शब्द से हिब्रू शब्द [आदम] निकला है। सृष्टि के आरम्भ में ''ब्रह्मा ने सारी वस्तुओं और प्राणियों का नामकरण किया''[९], यहूदी परम्परा के अनुसार आदम ने भी वही किया—''और आदम ने प्रत्येक जीवित प्राणी को जिस नाम से सम्बोधित किया, वही उसका नाम हो गया।''[१०] उत्तर काल में यहूदी अपने प्राचीन इतिहास और पुरखों को भूल गये और उनकी दृष्टि संकुचित हो गयी। वे अपने आपको सभी जातियों से प्राचीनतम मानने लगे।[११] किन्तु १६५४ ई० में आयरलैण्ड के आर्कबिशप अशर ने दृढ़ता से घोषणा की कि उसका प्राचीन धर्मग्रन्थ का अध्ययन यह सिद्ध कर चुका है कि सृष्टि की रचना ईसा पूर्व ४००४ में हुई। इसलिये पाश्चात्त्यों ने सत्रहवीं शताब्दी की समाप्ति से इस कालक्रम को स्वीकार किया और वे विश्वास करने लगे कि ईसा से ४००४ वर्ष पूर्व आदम उत्पन्न हुआ।[१२]

उसके पश्चात् अधिकतर आधुनिक यहूदी और धर्मान्ध ईसाई एवं विशेष कर संस्कृत के प्राध्यापकों को इस दृष्टिकोण के अनुकूल बनने में कठिनाई हुई कि उनके द्वारा स्वीकृत आदम की तिथि से भी प्राचीन कोई

Scanned by CamScanner

सभ्यता अथवा जाति हो सकती है ? उन्होंने अपने उदार बन्धु विद्वानों द्वारा स्वीकृत भारतवर्ष की सभ्यता और साहित्य की अति प्राचीनता और उससे भी अधिक मनुष्य की उत्पत्ति के प्रति आक्रोश व्यक्त किया। इस गहरी जड़ों वाले पक्षपात की ओर संकेत करता हुआ ए० एस० साइस लिखता है—

''परन्तु जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है उसके इतिहास का काल अब तक हमारी बाइबल की सीमाओं में बन्धा हुआ है। मनुष्य के अर्वाचीन प्रादुर्भाव का पुराना विचार अब तक उन क्षेत्रों में व्याप्त है जहाँ उसके पाने की न्यूनतम संभावना है और तथाकथित आलोचक इतिहासज्ञ आज भी मनुष्य के प्राचीनतम इतिहास की तिथियों को घटाने के प्रयत्न में अपने आपको व्यस्त किये हुए हैं। जो पीढ़ी इस धारणा को लेकर पालित-पोषित हुई है कि ईसा से लगभग ४००४ वर्ष पूर्व अथवा उसके आस-पास में सृष्टि रची गयी, उसके लिये यह विचार अकल्पनीय और अविश्वसनीय है कि—मानव स्वयं १००००० वर्ष पूर्व विद्यमान था।''[१३]

यथेष्ट प्रमाण इस अन्तर्निहित पूर्वाग्रह के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये दिये जा सकते हैं, किन्तु एक महान् नृवंशज्ञ का उपर्युक्त उद्धरण ही हमारे उद्देश्य के लिये पर्याप्त होगा।

यूरोप में संस्कृत का अध्ययन चल रहा था और विकसित हो रहा था और बहुत शीघ्र ही विद्वानों की मान्यताएँ और निर्णय धर्म गुरुओं के द्वारा बढ़ाये हुये पारम्परिक पक्षपात के प्रभाव से दिग्भ्रष्ट हो गये। विक्रम संवत् १८५८ से १८९७ तक युजेन् बर्नुफ फ्राँस में संस्कृत प्राध्यापक के आसन पर विराजमान रहा। उसके दो जर्मन शिष्य थे—रूडाल्फ राथ और मैक्समूलर, जो बाद में यूरोपीय संस्कृत विद्वत्ता में ख्यातनामा हुए।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत की बोडन पीठ का उद्देश्य—

संवत् १८९० में होरेस हेर्मन विल्सन आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत का बोडन प्राध्यापक बना। उसके उत्तराधिकारी प्रो० एम० मोनियर विलियम्स ने इस पीठ की स्थापना के उद्देश्य की ओर विद्वानों का ध्यान निम्नलिखित शब्दों में आकर्षित किया—

''मुझे इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना है कि मैं बोडन पीठ का द्वितीय अधिकारी हूँ और कि इसके संस्थापक कर्नल बोडन ने अपनी वसीयत (दि० १५ अगस्त १८११) में स्पष्ट रूप से निर्देश किया था कि उसके अत्यन्त उदार दान का मुख्य उद्देश्य है कि [बाइबल आदि] धर्म ग्रन्थों के संस्कृत में अनुवाद को प्रोन्नत किया जाये, जिससे हमारे देशवासी भारतीय मूल के लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित कराने में आगे बढ़ाने के

Scanned by CamScanner

लिये सक्षम बनें।''[१४]

पूर्वाग्रह ग्रस्त संस्कृत प्राध्यापक

१. **प्रो० विल्सन** उत्तम स्वभाव वाला व्यक्ति था, किन्तु जिस पीठ पर आसीन था उसके संस्थापक के उद्देश्यों के प्रति वह बद्ध था। इसलिये उसने 'द रिलीजियस् एण्ड फिलासोफिकल सिस्टम ऑफ हिन्दूज' (हिन्दुओं का धार्मिक और दार्शनिक तन्त्र) पर एक पुस्तक लिखी और उस पुस्तक के लिखने के कारण बताते हुए वह कहता है—''हिन्दू धर्म के प्रखरतम प्रत्याख्यान के लिये हेलबरी के वृद्ध निवासी और संस्कृत के महान् विद्वान् जॉन म्यूर द्वारा प्रदत्त २०० पौण्ड के पुरस्कारार्थ प्रतियोगियों की सहायता हेतु ये भाषण लिखे गये हैं।''[१५]

इस उद्धरण द्वारा शिक्षित पाठक यह निर्धारण कर सकते हैं कि किस सीमा तक यूरोपीय विद्वत्ता का उद्देश्य वैज्ञानिक कहा जा सकता है, कहाँ तक उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पक्षपात से रहित हो सकते हैं एवं विश्वसनीय कहला सकते हैं और उनका भारतीय सभ्यता और संस्कृति का चित्रण कहाँ तक सत्य हो सकता है?

२. इसी पक्षपात की भावना से प्रेरित होकर पूर्वोक्त विद्वान् **रुडाल्फ राथ** ने अपना शोध प्रबन्ध लिखा—''जूर लिटरेचर अन्द गेशिथ देस वेदा'' (Zur Literatur und Geschichte Des Veda)[१६] जो वैदिक साहित्य और इतिहास पर औपचारिक विवेचन है। १९०९ वि० में उसका यास्कीय निरुक्त[१७] का संस्करण प्रकाशित हुआ। वह अपनी जर्मन प्रतिभा और निज अध्ययन पर अत्यधिक गर्वित था। उसने दावा किया कि—वैदिक मन्त्रों का अनुवाद निरुक्त की अपेक्षा कहीं अच्छा जर्मन भाषा-विज्ञान की सहायता से किया जा सकता है।[१८] राथ ने अन्य बहुत सी बातें इस अहङ्कार-वृत्ति से लिखी हैं।

३. **डब्लू डी व्हिट्ने** के लेखन में भी वैसा ही अहङ्कार प्रकाशित होता है, जो दावा करता है—वेदों को यथार्थ रूप में समझने के लिए एकमात्र 'जर्मन सम्प्रदाय' के सिद्धान्त ठीक-ठीक मार्गदर्शन कर सकते हैं।[१९]

४. **मैक्समूलर**—मैक्समूलर राथ का सहपाठी था। अपने गुरु की छाप के अतिरिक्त लार्ड मैकाले के साथ मैक्समूलर की २८ दिसम्बर १८५५ ई० में हुई भेंट ने उसके भारत विरोधी दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। मैक्समूलर को एक घण्टे तक मौन बैठना पड़ा, जबकि इतिहासज्ञ (मैकाले) अपनी परस्पर विरोधी मान्यताओं की बौछार करता रहा और फिर अपने भेंटकर्त्ता (मैक्समूलर) को निरस्त कर दिया जो एक सामान्य शब्द बोलने का निष्फल प्रयत्न कर रहा था। मैक्समूलर लिखता है—''मैं

Scanned by CamScanner

अत्यन्त शोकाकुल और बुद्धिमत्तर व्यक्ति के रूप में आक्सफर्ड लौटा।''[२०]

दो कारणों से मैक्समूलर का नाम भारतीय लोगों को अच्छे प्रकार विदित हुआ। प्रथम, वह बहुत सी पुस्तकों का रचयिता था, द्वितीय, महान् विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८८१-१९४० वि०) ने अपनी जनसभा के भाषणों और लेखों में उसके दृष्टिकोण की कठोर आलोचना की। मैक्समूलर की मान्यताओं का मूल्य उसके निम्नलिखित कथनों से आंका जा सकता है।

(१) ''इतिहास सिखाता प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण मानव जाति को ईसाइयत के सत्यों को पूर्णतः स्वीकार कर सकने से पूर्व क्रमिक शिक्षा की अपेक्षा है। उच्चतर सत्य के प्रकाश की तात्कालिक स्वीकृति का सामना करने से पूर्व मनुष्य की सभी भ्रान्तियों का विनाश करना होगा। विश्व के प्राचीन धर्म निसर्ग का दुग्ध मात्र थे, जिस का स्थान उचित समय में जीवन के पोषक आहार को लेना था। बौद्ध धर्म आर्यों के संसार की सीमाओं से परे फैला है, और हमारे मर्यादित दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य जाति के विशाल भाग में ईसाइयत के आगमन को रोकता हुआ प्रतीत हो सकता है। परन्तु उस [प्रभु] की दृष्टि में जिसके लिये एक सहस्त्र वर्ष केवल एक दिन के तुल्य होता है, वह धर्म विश्व के प्राचीन धर्मों के तुल्य अपने ही दोषों से, ईश्वरीय सत्य के लिए मानव हृदय में स्थित अनिर्मूलनीय उत्कण्ठा को सुदृढ़ एवं गहरा करने के माध्यम से सहायता करते हुए ईसा के मार्ग को प्रशस्त करने में सहायक हो सकता है।''[२१]

(२) ''वैदिक सूक्तों की बड़ी संख्या अत्यन्त बालिश, अरुचिकर, निम्न और तुच्छ हैं।''[२२]

(३) ''नहीं वे (वेद) साधारण, नैसर्गिक, बालिश विचारों के साथ, बहुत सी ऐसी कल्पनाओं से युक्त हैं, जो हमें आधुनिक अथवा द्वितीय श्रेणी अथवा तृतीय श्रेणी की प्रतीत होते हैं।''[२३]

विश्व के प्राचीनतम और उच्च वैज्ञानिक पवित्र ग्रन्थ के प्रति ऐसे पाखण्ड पूर्ण अपशब्द केवल हठधर्मी (सच्चे नहीं) ईसाई, नीच अज्ञानी या अपवित्र नास्तिक के मुख से ही निकल सकते हैं। मैक्समूलर ईसाइयत को छोड़कर, प्रत्येक अन्य धर्म का कट्टर विरोधी था जिसको वह अविकसित समझता था। उसकी धार्मिक असहिष्णुता जर्मन विद्वान् डॉ० स्पीगल के इस दृष्टिकोण के तीव्र खण्डन से स्पष्ट है कि बाइबल का सृष्टि-उत्पत्ति का सिद्धान्त ईरानी धर्म से ग्रहण किया गया था। इस कथन से आहत होकर मैक्समूलर लिखता है—

''स्पीगल जैसे लेखक को जानना चाहिये कि वह दया की आशा नहीं कर सकता। नहीं, उसे स्वयं दया की इच्छा भी नहीं करनी चाहिये,

Scanned by CamScanner

अपितु बाइबल की आलोचनाओं के तूफानी समुद्र में गोले बरसाने वाला जो जलपोत उसने उतारा है, उसके विरुद्ध गोलों की भारी बौछार को निमन्त्रित करना चाहिये।''[२४] (आश्चर्य से कहना पड़ता है कि हमारा इतिहास डॉ० स्पीगल के सत्य दृष्टिकोण का इस सीमा तक समर्थन करता है कि बाइबल के वचन ईरान, बेबिलोन और मिश्र के धर्म-ग्रन्थों से ग्रहण किये गये थे, जो विश्व के प्राचीन इतिहास के अनुसार, क्रमशः वैदिक स्रोतों से ग्रहण किये गये थे)।

एक अन्य स्थान पर वही पाश्चात्त्य 'वैज्ञानिक' वैदुष्य का भक्त कहता है—''ऐसा होने पर भी निर्णय करने में सर्वथा समर्थ बहुत से लोग पारसियों के मत-परिवर्तन की विश्वास पूर्वक प्रतीक्षा करते हैं, तो इसका कारण यह है कि महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर वे अनजाने ही ईसाईयत के शुद्ध सिद्धान्त के निकट पहुँच चुके हैं। उन्हें जेन्दा-अवेस्ता पढ़ने दीजिये जिसमें वे विश्वास की शपथ लेते हैं और वे पायेंगे कि उनका विश्वास अब यस्न (यज्ञ), वेण्डीडड, विस्पर्ड में नहीं है। ऐतिहासिक स्मृति चिह्नों के रूप में ये कृतियाँ यदि समीक्षात्मक रूप से भाषान्तरित की जाय तो प्राचीन विश्व के विशाल पुस्तकालय में सर्वदा महत्त्वपूर्ण स्थान धारण करेगी। इस युग में, धार्मिक विश्वास की दिव्य वाणी के रूप में, वे निष्प्राण और कालगणना-भ्रम मात्र हैं।''[२५]

सरसरी दृष्टि से पढ़ने वाला भी ईसाई धार्मिक उन्माद का प्रसार इन पंक्तियों से गुजरते हुये देख सकता है। यदि मैक्समूलर जैसे हठधर्मी व्यक्ति की लेखनी से भारतीय सभ्यता की कदाचित् प्रशस्ति निकल सकी है, तो वह इस संस्कृति की अनुपम महत्ता के कारण है।

मैक्समूलर और जैकालियट—चन्द्रनगर में मुख्य न्यायाधीश फ्राँस के विद्वान् लूई जैकालियट ने संवत् १९२६ में एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'ला बीब्ल दां लेन्द'। अगले वर्ष उसका अंग्रेजी अनुवाद भी छपा। उस पुस्तक में सुपठित लेखक ने यह स्थापना प्रस्तुत की कि संसार में सभी प्रमुख विचारधाराएँ प्राचीन आर्यों की विचारधारा से निकली हैं। उसने भारतवर्ष को 'मानवता का दोला'[२६] कहा है।

''हे प्राचीन भारत की भूमि! मानव के 'दोला'! धन्य हो! धन्य पूज्य मातृभूमि, जिसको शताब्दियों तक चलने वाले नृशंस आक्रमण अब तक विस्मृति की धूलि के नीचे नहीं दबा सके! धन्य है, विश्वास, प्रेम, काव्य और विज्ञान की पितृभूमि, हम तेरे अतीत का पुनरुज्जीवन अपने पाश्चात्त्य भविष्य में स्वागत करें!''

इस पुस्तक ने मैक्समूलर को मर्माहत कर दिया और उसने इसकी समीक्षा करते हुए कहा—''ग्रन्थकार भारतीय ब्राह्मणों के धोखे में आ गया

Scanned by CamScanner

प्रतीत होता है।''

मैक्समूलर के पत्र—व्यक्तिगत पत्र लेखक के अन्तर्मन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति जिन पत्रों को अपने सम्बन्धी और मित्रों को लिखता है, उनमें अपने अन्तरतम भावों को व्यक्त कर देता है। इस प्रकार के पत्र उसके सच्चे स्वभाव और चरित्र के मूल्याङ्कन में अत्यन्त सहायक होते हैं।

सौभाग्य से ''लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ फ्रेडरिक मैक्समूलर'' नामक संग्रह दो खण्डों में प्रकाशित किया जा चुका है। उन पत्रों में से कुछ उद्धरण उस व्यक्ति के मनोभाव को प्रकाशित करने में पर्याप्त होंगे, जो पश्चिम में अपने संस्कृत ज्ञान और निष्पक्ष निर्णयों के लिये अत्यन्त आदर से देखा जाता है।

(अ) १८६६ ई० (विक्रम संवत् १९२३) के पत्र में वह अपनी पत्नी को लिखता है—

''यह मेरा संस्करण और वेद का अनुवाद उत्तरकाल में भारत के भाग्य को बड़ी सीमा तक प्रभावित करेगा.....यह उनके धर्म का मूल है और मैं यह निश्चित अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह दिखाना कि मूल क्या है, उस सबको उखाड़ फैंकने का ही एकमात्र मार्ग है, जो उस (मूल) से गत तीन हजार वर्षों में उत्पन्न हुआ है।''

(आ) एक अन्य पत्र में वह अपने पुत्र को लिखता है—

क्या तुम संसार में सबसे उत्तम किसी पवित्र पुस्तक को बताओगे? मैं कहता हूँ—'नया विधान' है। उसके बाद मुझे कुरान को रखना चाहिये[२७] जो अपनी नैतिक शिक्षाओं की दृष्टि से, 'नये विधान' के उत्तरकालीन संस्करण की अपेक्षा कठिनाई से ही अधिक है। उसके पश्चात् अनुगमन करते हैं—''पुराना विधान दाक्षिणात्य बौद्ध त्रिपिटक.....वेद और अवेस्ता।''

(इ) १६ दिसम्बर १८६८ ई० (संवत् १९२५) को वह भारत के लिए मन्त्री डयुक् ऑफ आरगाइल को लिखता है—

''भारत का प्राचीन धर्म नष्ट हो चुका है और यदि ईसाईयत प्रवेश नहीं करती है, तो यह किसका दोष होगा?''

(ई) २९ जनवरी १८८२ ई० (संवत् १९३९) को उसने बैरमजी मालाबारी को लिखा—

''मैं केवल ईसाई के रूप में अथवा यूरोपियन के रूप में नहीं, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बताना चाहता था कि इस प्राचीन धर्म का वास्तविक ऐतिहासिक मूल्य क्या है। परन्तु इसमें वाष्पयन्त्र, विद्युत् और

Scanned by CamScanner

यूरोपियन दर्शनशास्त्र एवं नैतिकता का अन्वेषण करें, तो आप इस को इसके वास्तविक स्वरूप से वञ्चित करते हैं।''

यहाँ पर मैक्समूलर वैदिक धर्म के सच्चे ऐतिहासिक मूल्य को जानने का दावा करता है, परन्तु हमारा इतिहास उस ज्ञान और विद्वत्ता की शून्यता को व्यक्त करने जा रहा है जिस पर ये और इनके साथी अधिकार करने का अहङ्कार करते हैं।

५. **वेबर का पक्षपात**—जिस समय इंग्लैण्ड में मैक्समूलर भारतीय साहित्य और धर्म की कीर्ति को मलिन करने में व्यस्त था, उसी समय जर्मनी में अल्बर्ट वेबर इसी निन्दनीय कार्य के लिये अपने आपको समर्पित कर रहा था। हम्बोल्ट द्वारा की गई भगवद्गीता की अपरिमित प्रशंसा का उल्लेख हम पूर्व कर चुके हैं। वेबर इसको सहन नहीं कर सका। उसने यह स्वत: सिद्ध मान लेने का साहस किया कि—महाभारत और गीता ईसाई विचारों से प्रभावित हैं। देखिये, वह क्या लिखता है—

''सम्पूर्ण ग्रन्थ में व्याप्त कृष्ण सम्प्रदाय का विशेष रूप ध्यान देने योग्य है। ईसाई आख्यान विषय और अन्य पाश्चात्त्य प्रभाव निस्सन्देह विद्यमान हैं.....।''[२८]

दो अन्य पाश्चात्त्य विद्वानों—लारिन्सर[२९] और ई० वाशबर्न हाप्किन्स[३०] ने वेबर के दृष्टिकोण का जोरदार समर्थन किया।

परन्तु यह विचार इतना अधिक विवेकशून्य था कि—यूरोपीय विश्व-विद्यालयों के अधिकतर प्राध्यापकों ने अपने ईसाई झुकाव के बावजूद इसे स्वीकार नहीं किया। किन्तु इस मिथ्या विचार के प्रसार ने अपनी शरारत तो कर ही दी और यही विचार पश्चिमी विद्वानों (प्रतिपक्षियों सहित) के महाभारत का समय ईसवी संवत् से पूर्व निर्धारित करने में संभ्रम के लिए मुख्यत: उत्तरदायी हुआ।

वेबर और बंकिमचन्द्र—इस विचार की स्वीकृति में मैं अकेला नहीं हूँ। सुप्रसिद्ध बङ्गाली विद्वान् बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय भी अपने कृष्ण चरित में वेबर के विषय में यह कहने को विवश है—

''विख्यात वेबर नि:सन्देह विद्वान् था, परन्तु मैं यह सोचने के लिये बाध्य हुआ हूँ कि वह भारत के लिये एक अशुभ क्षण था जब उसने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। कल के जर्मन बर्बरों के वंशज भारत की प्राचीन कीर्ति से अपने आपको समन्वित नहीं कर सके। इसलिये उनका तत्परतापूर्ण उद्योग यह सिद्ध करने के लिये था कि भारतीय सभ्यता का प्रादुर्भाव अपेक्षाकृत अधुनातन है। वे अपने आपको इस विश्वास में समर्थ नहीं बना सके कि—महाभारत ईसा के जन्म से शताब्दियों पूर्व रचा

Scanned by CamScanner

गया।''[३१]

वेबर और गोल्डस्टुकर—वेबर और बोथलिंग ने 'संस्कृत वारतेरबुख्' नामक संस्कृत भाषा का शब्दकोष तैयार किया। प्रो० कुह्न भी उसके सहायकों में से एक था। प्राधानतः मिथ्या और काल्पनिक भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधृत यह ग्रन्थ अनेक स्थानों पर अशुद्ध अर्थों से परिपूर्ण है, इसलिये अविश्वसनीय और भ्रामक है। दुःख है कि निपट पक्षपात के कारण बहुत सा श्रम व्यर्थ किया गया। वह शब्दकोश प्रा० गोल्डस्टुकर की तीव्र आलोचना का विषय बना जिसने दोनों सम्पादकों को पीडित किया। वेबर इतना दुःखी हुआ कि वह गोल्डस्टुकर के विरुद्ध तुच्छ प्रकार की[३२] अपशब्दात्मक भाषा के प्रयोग पर उतर आया। उसने कहा कि गोल्डस्टुकर के 'वारतेर बुख' शब्दकोश सम्बन्धी विचार ''उसकी मानसिक शक्ति के पूर्ण व्यतिक्रम'' को प्रदर्शित करते हैं[३३], क्योंकि उसने सर्वश्रेष्ठ हिन्दू विद्वानों की प्रामाणिकता का स्वच्छन्दता से और सरलता से प्रत्याख्यान नहीं किया। उनके महत्त्वहीन आक्रमणों का उत्तर देते हुये गोल्डस्टुकर ने प्रो० राथ, वोथलिंग, वेबर और कुह्न के षड्यन्त्र का पर्दाफाश किया जो उन्होंने प्राचीन भारत के गौरव को सुरङ्ग लगाने के लिए रचा था। उसने लिखा—

''वस्तुतः प्रथम अवसर में ही यह दर्शाना मेरा कर्त्तव्य होगा कि डॉ० बोथलिंग पाणिनि के सरल नियमों को भी समझने में असमर्थ है, कात्यायन के नियमों को समझने में उससे भी कम और शास्त्रीय ग्रन्थों को समझने के लिए उनके नियमों के प्रयोग के विषय में तो और भी कम समर्थ है। शब्दकोश के तत्सम्बन्धी विभाग में इतनी अधिक त्रुटियाँ हैं कि—वह (शब्दकोश) प्रत्येक गम्भीर संस्कृतज्ञ को तब निराशा से भर देगा, जब वह (संस्कृतज्ञ) उन (त्रुटियों) के कारण संस्कृत भाषा विज्ञान के अध्ययन पर अवश्य पड़ने वाले दुष्प्रभाव का आकलन करेगा।''[३४]

वह आगे टिप्पणी करता है कि ''जिन समस्याओं का बहुत ही सावधानी से समाधान किया जाना चाहिये था और जिनका समाधान परिश्रमपूर्ण अनुसन्धान के बिना नहीं किया जा सकता था, उनको 'वारतेर बुख्' में अत्यन्त अनधिकृत ढंग से तुच्छ बना दिया गया है।''[३५]

बोथलिंग के पक्ष के व्यक्तियों में से एक ने गोल्डस्टुकर से 'पाणिनि के सम्पादक' (बोथलिंग) के प्रति न केवल आदर प्रकट करने अपितु गुप्त कारणों से उसकी सर्वविध भयङ्कर भूलों को प्रामाणिक यथार्थ के रूप में जनता में प्रचलित करने की प्रार्थना की।[३६]

हम जानते हैं कि उनके उस ईसाई और यहूदी पक्षपात के अतिरिक्त अन्य कोई गुप्त कारण नहीं थे, जो हिन्दू वैयाकरणों की यथार्थ सूचना को

Scanned by CamScanner

दबाने के लिये और आर्य संस्कृति एवं सभ्यता के अवमूल्यन एवं कलङ्कित करने के लिये और साथ ही साथ इसी उद्देश्य के लिये ब्रिटिश शासन के साधन के रूप में कार्य करने के लिए उनको प्रोत्साहित करता था।

प्रो० कुह्न, जिसने 'वारतेरबुख्' के विषय में अपना मत प्रकट किया था, ''ऐसा व्यक्ति था जिसका संस्कृत अध्ययन से मात्र इतना सम्बन्ध था कि वह संस्कृत जानने वालों को संस्कृत की पुस्तकें हस्तगत कराता था। वह साहित्यिक दृष्टि से शून्य था, पूर्णतः अज्ञात था, परन्तु प्रेरक संख्यायुक्त परिमाण (उपाधियों एवं पद) का अहंकार पाले हुए था। वह व्यक्ति उसके मित्रों के अनुसार संस्कृत से पूर्णतः अनभिज्ञ था।''[३७]

प्रामाणिक हिन्दू परम्परा के अनधिकारिक उपहास से उकसाया गया गोल्डस्टुकर 'वैज्ञानिक' विद्वानों के वेश में छद्मवेशी धूर्त मिथ्या प्रचारकों के संघ के विरुद्ध अपनी 'दुर्बल' किन्तु 'एकल' आवाज उठाने के लिये विवश हुआ था। वह अपने परिश्रमपूर्ण ग्रन्थ का उपसंहार निम्नलिखित अथपूर्ण टिप्पणी के साथ करता है।

''जब मैं देखता हूँ कि अतिविशिष्ट और उच्च शिक्षित हिन्दू विद्वान् और दिव्य पुरुष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और कदाचित् प्राचीन भारत के एक मात्र ज्ञान-स्त्रोत-सिद्धान्त रूप से तिरस्कृत किये जाते हैं, लिखितरूप से खण्डित किये जाते हैं, और परिणामतः वैदिक ग्रन्थों का अनुवाद करते समय अलग रख दिये जाते हैं;.....जब इस प्रकार के विवरण वाले संस्कृतज्ञों का एक दल हिन्दू प्राचीनता के आरम्भ में विद्यमान वेदार्थ को बताने का मिथ्या अहङ्कार करता है;.....जब मैं विचारता हूँ कि संस्कृत भाषा विज्ञान के अध्ययन की इस पद्धति का अनुसरण वे लोग करते हैं जिनके शब्द स्पष्टतः उनके द्वारा प्राप्त व्यावसायिक पद से बल और प्रभाव को ग्रहण करते हैं; तब मैं मानता हूँ कि यदि संस्कृत भाषा-विज्ञान के इन क्रूर प्रतिशोधकों का विरोध न करूँ, तो यह मेरे साहस की कमी और कर्त्तव्य का त्याग होगा।''[३८]

६. **मोनियर विलियम्स** जिसने बोडन पीठ की स्थापना के वास्तविक उद्देश्य को प्रकट किया, स्वयं इस प्रकार कहता है—

''इसलिये ब्राह्मणवाद को अवश्य नष्ट होना चाहिये। वस्तुतः अति सामान्य वैज्ञानिक विषयों से सम्बद्ध मिथ्या विचार इसके सिद्धान्त के साथ इतने मिश्रित हो गये हैं कि सामान्यतम शिक्षा—भूगोल विषयक सरलतम पाठ—ईसाईयत की सहायता के बिना इसकी नींव को अन्तत अनिवार्य रूप से उखाड़ फेंकने में समर्थ होने चाहिये।''[३९]

''जब ब्राह्मणवाद के सुदृढ़ दुर्ग की दीवारें चारों ओर से घेर ली गयी हैं, सुरंगें लगा दी गयी हैं और अन्ततः ईसा के सैनिकों (पादरियों) ने

Scanned by CamScanner

अन्तिम धावा बोल दिया है, अत: ईसाईयत की विजय असाधारण और पूर्ण होगी।''[४०]

इसलिये हम यह निष्कर्ष निकालने में युक्त हैं कि उसकी पुस्तक ''दि स्टडी ऑफ संस्कृत इन रिलेशन टु मिशनरी वर्क इन इण्डिया'' [भारत में मिशनरी कार्य से सम्बद्ध संस्कृत का अध्ययन] १८६१ ई० लन्दन ईसाईयत को प्रोन्नत करने और हिन्दूत्व को नष्ट करने के मूलभूत उद्देश्य से लिखी गयी है। इसके बावजूद हमारे कुछ भारतीय संस्कृत विद्वान् इन यूरोपीय विद्वानों को संस्कृत साहित्य के निष्पक्ष अध्येता कहते हैं, जिनका मूलभूत उद्देश्य ज्ञानमात्र के लिये ज्ञानार्जन करना रहा है।

पुन: बाईबल के प्रति अन्तर्निहित अपने बद्धमूल आदर को व्यक्त करते हुए मोनियर विलियम्स लिखता है—

७. **रुडाल्फ हार्नलि**—रुडाल्फ हार्नलि संवत् १९२६ में बनारस के क्विन्स कॉलेज का प्रिन्सिपल था। उसी समय महर्षि दयानन्द सरस्वती का, जिन्होंने उत्तरकाल में आर्यसमाज की स्थापना की, अपने मिशन के विस्तार के लिए प्रथम वार बनारस में आगमन हुआ। डॉ० हार्नलि कई अवसरों पर स्वामी दयानन्द से मिला। उसने स्वामीजी पर एक लेख लिखा[४१] जिससे निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है क्योंकि यह उन अनेक यूरोपीय विद्वानों की यथार्थ अभिसन्धि को करता है, जिन्होंने संस्कृत और भारतवर्ष की प्राचीन धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया। हार्नलि कहता है—

.....''वह (दयानन्द) हिन्दुओं को सम्भवत: यह विश्वास दिला सकता है कि उनका आधुनिक हिन्दुत्व सर्वथा वेदों के विरुद्ध है। यदि एक बार उन्हें इस मौलिक भूल का पूर्ण विश्वास हो जाय तो वे नि:सन्देह तत्काल हिन्दुत्व को छोड़ देंगे, ...वे वैदिक अवस्था की ओर नहीं लौट सकते, जो अब मृत और अतीत हो गई है और पुन: जीवित नहीं होगी। बाद में थोड़ी बहुत नवीनता अवश्य आयेगी। हमें आशा है कि वह ईसाईयत हो सकती है।''[४२]

८. **रिचर्ड गार्बे**—एक जर्मन संस्कृतज्ञ था जिसने बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन किया था। इन के अतिरिक्त उसने १९१४ ई० में मिशनरियों के लिये एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक था—''इन्देन अन्द दास क्रिश्चियन तूम'' (Indien und das Christen tum)। इस पुस्तक में उसका मतवादी पक्षपात स्पष्ट झलकता है।

९. **विण्टरनित्ज**—उपरि-वर्णित प्रकार के पश्चिमी संस्कृत विद्वानों में अपने निज दर्शन एवं धर्म की श्रेष्ठता और अपने निज निष्कर्षों की स्थिरता का अहङ्कार इतना बद्धमूल है कि वे जनता के समक्ष निर्लज्जता से उसे अभिव्यक्ति देने में किसी संकोच का अनुभव नहीं करते। शोपनहार

Scanned by CamScanner

की उपनिषदों के दर्शन की आदरपूर्ण प्रशंसा ने, जिसको भारतीय लेखकों ने बहुधा उद्धृत किया है, यूरोपीय-विद्वानों के हृदय में पीड़ा उत्पन्न की। १९२५ ई० तक के उत्तरकाल में प्रो० विण्टरनित्ज ने शोपनहार के सत्य और हार्दिक विचारों को निम्नाङ्कित शब्दों में खण्डित करना अपना कर्त्तव्य समझा—

''तो भी मैं विश्वास करता हूँ कि वह उन्मत्त अतिशयोक्ति है जब शोपनहार कहता है—'उपनिषदों की शिक्षा मनुष्य के सर्वोच्च ज्ञान और बुद्धि के फल' को दर्शाती है और उसमें लगभग अतिमानव अवधारणायें विद्यमान हैं जिनके आविष्कर्त्ता कठिनाई से ही मनुष्य समझे जा सकते हैं।''[४३]

उपनिषदों सम्बन्धी अपनी इस निन्दा से सन्तुष्ट न होकर उसने वेदों की महत्ता को भी तिरस्कृत करने का साहस यह कहते हुए किया—

''यह सत्य है कि इन सूक्तों के रचनाकार कदाचित् ही यहूदियों के धार्मिक काव्य की उच्च उड़ानों और गम्भीर भावनाओं तक पहुँच पाते हैं।''[४४]

यह कलङ्कित करने का कार्य केवल संस्कृत विद्वानों तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु उसके मध्य से यह विज्ञान के क्षेत्र में भी स्रवित हुआ। प्राचीन हिन्दुओं के यथार्थ एवं नानाविध वैज्ञानिक ज्ञान के विषय में[४५] एक शब्द भी नहीं जानने वाला सर विलियम सेसिल डैम्पियर लिखता है—

''सम्भवतः अन्य विज्ञानों (दर्शन और भैषज के अतिरिक्त) को भारतीय योगदान की अल्पता अंशतः हिन्दूधर्म के कारण हो सकती है।''[४६]

लौकिक साहित्य में भी हिन्दुत्व के प्रति द्वेष का चरमोत्कर्ष आगे वर्णित जैसी बहुत ही शरारत भरी उत्तेजक टिप्पणियों में देखा जा सकता है—

(क) ''हिन्दूधर्म भारत के लिये अभिशाप है। २० करोड़ से अधिक लोग पौराणिक कथाओं के वानर-मिश्रण पर विश्वास करते हैं, जो राष्ट्र का गला घोट रहा है। भारत में जो कोई ईश्वर प्राप्ति की उत्कट इच्छा करता है, वह शीघ्र ही अपना दिल और दिमाग दोनों खो देता है।''[४७]

(ख) बम्बई का प्रो० मैकेञ्जी भारतीय नीतिशास्त्र को दोषयुक्त, अतार्किक, असामाजिक, किसी भी दार्शनिक आधार से रहित, तपस्या एवं कर्मकाण्ड के घृणास्पद विचारों से निष्फल और 'यूरोप की उच्चतर आध्यात्मिकता' की अपेक्षा सर्वथा हीन पाता है। वह अपनी पुस्तक 'हिन्दू एथिक्स' का अधिकतर भाग अपनी इस प्रतिज्ञा के समर्थन में अर्पित करता

Scanned by CamScanner

है और इन विजयी निष्कर्षों पर पहुँचता है कि हिन्दू दार्शनिक विचार 'जब तर्कपूर्ण रीति से विनियुक्त किये जाते हैं तो नीतिशास्त्र के लिये कोई स्थान नहीं छोड़ते' और वे 'सुदृढ नैतिक जीवन के विकास को' अवरुद्ध करते हैं।[४८]

जो प्रशासन भारत की मित्रता और सहानुभूति को प्राप्त करने के लिये उत्सुक है, उसके लिये यह गम्भीर भूल का विषय है कि रिप्ले जैसे व्यक्ति के ऐसे घृणित प्रकार के साहित्य को प्रकाशित करने की अनुमति देता है। और यह पुनः पाश्चात्ताप का विषय है कि ऐसी पुस्तकों पर वे चाहे भारत में प्रकाशित हुई हों अथवा बाहर, हमारे राज़नेताओं द्वारा ध्यान नहीं दिया जाता है और हमारी राष्ट्रिय सरकार के द्वारा प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता है। न केवल हमारी सरकार ही इस प्रकार के मिथ्या निन्दात्मक साहित्य पर प्रतिबन्ध के प्रति उपेक्षा भाव रखती है, अपितु हमारे विश्वविद्यालय भी न केवल व्यवस्था करते हैं अपितु भारतीय इतिहास और संस्कृति के विषय में उच्च अध्ययन के लिये उन विदेशी लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों की अनुशंसा भी करते हैं, जो खुले रूप से या अत्यन्त चातुर्यपूर्ण ढंग से हमारी सभ्यता को कलङ्कित करने का कोई अवसर नहीं छोड़ते हैं।

जिस देश के ब्राह्मणों से सम्पूर्ण विश्व नैतिकता और चरित्र के नियमों की शिक्षा[४९] लेता था, उसके नीतिशास्त्र पर मैकेञ्जी जैसों की टिप्पणियाँ एवं घृणास्पद वचन और राष्ट्रीय अपमान से कम नहीं हैं। स्थिति का व्यङ्ग यह है कि निन्दा किये जाने के स्थान पर ऐसे लोग हमारे शिक्षाविदों से और राजनैतिक नेताओं से मान्यता और सम्मान प्राप्त करते हैं।

प्रायः भारतीय विद्वान् और राजनेता इस पक्षपात से अनभिज्ञ— हमने इस प्रकार के पाश्चात्त्य विद्वानों की मानसिकता को पर्याप्त प्रकट किया है। उन्होंने अपनी सरकारों और भारत की अंग्रेजी सरकार से भी विपुल आर्थिक सहायता प्राप्त की जिसे उन्होंने स्वच्छन्दरूप से ऐसे लेख, पुस्तिका और ग्रन्थों को लिखने में व्यय किया, जो उनके प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण को धूर्ततापूर्ण और छद्म पद्धति से प्रचार करते हैं।

उनका अवधानपूर्ण प्रयत्न यह था कि वे अपने को समर्पित न करें और अपनी विद्वत्ता और निष्पक्षता के वेश में भारतवर्ष के लोगों और संसार को पथभ्रष्ट करें। यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती उनकी दुष्टतापूर्ण योजनाओं को निर्दयतापूर्वक उद्घाटित करके उनके हवाई किलों को ढहा न देते, तो वे अपने कार्य में सुसफल हो जाते। स्वामीजी अद्वितीय व्यक्तित्व, दुर्धर्ष साहस, तीक्ष्णबुद्धि, दूरदृष्टि और गम्भीर चिन्तन से युक्त पुरुष थे। वे अपने समय के बहुत से यूरोपीय विद्वानों के सम्पर्क में आये। वे जार्ज बूलर, मोनियर विलियम्स[५०], रुडाल्फ हार्नलि, थीबो और अन्य

Scanned by CamScanner

विद्वानों से मिले थे, जिन्होंने ईसाई उत्साह से संस्कृत अनुसन्धान के क्षेत्र में कार्य किया। वे सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिनकी सूक्ष्म दृष्टि उनके अनुसन्धान कार्य के दूरगामी उद्देश्यों को देखने में विफल नहीं हो सकी, भले ही भारतवर्ष के सामान्य लोग और सरकारी सेवा में लगे हुये प्रायः उच्चशिक्षित व्यक्ति उन (पाश्चात्त्यों) के तथाकथित अतिगम्भीर वैदुष्य, कठोर पक्षपात रहितता वैज्ञानिक और उदार दृष्टिकोण से मोहित हो गये थे। उन्होंने उचित समय पर इस देश के लोगों को चेतावनी दी और उनको इन मिथ्या विद्वानों और गुप्त मिशनरियों के पञ्जों से बचाने में अत्यधिक सफल हुए।

हमने पाश्चात्त्य विद्वानों की कई पीढ़ियों द्वारा निर्मित किया हुआ लगभग सारा साहित्य पढ़ा है और खुले दिमाग से उसका गम्भीर विवेचन किया है। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन विद्वानों में से अधिकांश के लेखनों में निश्चित रूप से ईसाईयत पूर्वाग्रह का रङ्ग है, जो उस सम्पूर्ण का अवमूल्यन करने के लिए उत्तरदायी है जो भारतवर्ष में महान् है। इन लेखकों का चरम उद्देश्य अत्यन्त धूर्ततापूर्ण ढंग से इस देश के लोगों के दिमाग में उनके धर्म और संस्कृति की हीनता को स्थापित करके उन्हें ईसाईयत में दीक्षित करना प्रतीत होता है।

परन्तु सत्य अधिक काल तक छिप नहीं सकता। अब भारतवर्ष के कुछ आधुनिक विद्वानों ने भी कुछ सीमा तक यूरोपीय विद्वत्ता के पतले आवरण में से, यद्यपि गहराई से नहीं, देखना आरम्भ किया है, जैसे—

(१) प्रो० वी० रङ्गाचार्य लिखता है—

''मिश्र या मेसोपोटामिया की तिथियों को स्वच्छन्दता पूर्वक प्राचीनतम—न्यूनतम ई० पूर्व ५००० वर्ष तक पीछे जाने वाली तिथियाँ—और इस आधार पर कि भारत उनका ऋणी है, प्राचीन भारत की तिथियों को यथासम्भव अर्वाचीनतम मानने में लगभग सभी अंग्रेज और अमेरिकन विद्वानों ने असीम शरारतें की हैं।''[५१]

(२) मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास विभागाध्यक्ष श्री नीलकण्ठ शास्त्री को, यद्यपि वह अनेक अस्थापनीय पाश्चात्त्य सिद्धान्तों का समर्थक था, लिखना पड़ा—

''१९वीं शताब्दी के प्रकाश में यूरोप का पूर्वाग्रह भारतीय समाज और भारतीय इतिहास की समालोचना के अतिरिक्त और क्या है? यह समालोचना अंग्रेजी शासन और यूरोपीय मिशनरियों ने आरम्भ की थी और 'लासेन' के उच्च पाण्डित्य से अच्छी प्रकार से प्रकाशित हो रही है। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी की अपूर्ण अभिकाङ्क्षाओं ने लासेन के विचारों को आकार देने में निश्चित रूप से अंशदान किया था।''[५२]

Scanned by CamScanner

(३) भारत सरकार के भूतपूर्व शिलालेख विद्वान् श्री सी० आर० कृष्णमाचारुलु ने पाश्चात्त्य विद्वानों के दूरगामी उद्देश्यों को अनुभव करके अधिक दृढ़ता से अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। वह लिखता है—

''ये लेखक सांस्कृतिक सहानुभूति के ऐतिहासिक सत्य के लिये प्रामाणिकता प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि ये नव विकास के राष्ट्रों से उभरे हैं और इस इतिहास को सांस्कृतिक से भिन्न उद्देश्यों से लिखते हैं, जो कुछ अवस्थाओं में भारत के प्राचीन इतिहास की यथार्थ व्याख्या के प्रति स्पष्ट रूप से जातीय और पक्षपातपूर्ण हैं।''[५३]

(४) प्रो० आर० सुब्बाराव एम० ए०, एल० टी० वाल्टेर (२९ दिसम्बर १९५३) में हुए भारतीय इतिहास काँग्रेस के १६वें अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण (विभागीय) में लिखता है—

''दुर्भाग्य से पुराणों की ऐतिहासिकता और उनकी प्रामाणिकता को कुछ पाश्चात्त्य विद्वानों ने विकृत कर दिया है, जिन्होंने कुछ हठ से कहा है कि ऐतिहासिक काल २००० ईसा पूर्व से परे नहीं जा सकता और महाभारत युद्ध को १४०० ईसा पूर्व से प्राचीनतर निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने ब्राह्मणों को अपनी प्राचीनता को ऊपर उठाने का दोषी ठहराया और हिन्दुओं के ज्योतिष ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया।''[५४]

निष्कर्ष—

संक्षिप्तरूप से विगत पृष्ठ यह स्पष्ट करते हैं कि यह ईसाई और यहूदी पक्षपात ही है, जिसने—

(अ) प्राचीन भारतीय इतिहास की वास्तविक तिथियों को स्वीकार करने की अनुमति पाश्चात्त्य विद्वानों को नहीं दी, जो वेदों को पुराने विधान (बाईबल) के प्राचीनतम भाग की अपेक्षा प्राचीनतर मानने और ईसापूर्व २५००[५५] से परे रखने के प्रति सदा अनिच्छुक थे।

प्राचीन भारतीय ज्ञान की प्रशस्ति में शोपनहार का अनुसरण करने वाला और कालक्रम विषय पर प्रत्यक्ष रूप से कार्य न करने वाला पॉल डयुसन्, ए० डब्लू० राइडर और एच० जिमर का सम्प्रदाय भी इन अत्यन्त अवैज्ञानिक और काल्पनिक तिथियों के भार को दूर नहीं फैंक सका।

(आ) पाश्चात्त्य भारतविदों की दो परस्पर सम्बद्ध व्याधियों का कारण बना; प्रथमत: मिथ (कल्पित कथा), मिथिकल (कल्पित कथा-सम्बन्धि), मिथालौजी (कल्पित कथा शास्त्र) की व्याधि जिसके अनुसार ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, पर्वत, नारद, कश्यप, पुरूरवा, वसिष्ठ और अन्य अनेक प्राचीन ऋषि कल्पित घोषित किये गये हैं। यह सोचकर कि भारतीय

Scanned by CamScanner

इतिहास की तिथियाँ अतिप्राचीन काल तक चली जायेंगी, किसी ने उनके वास्तविक ऐतिहासिक स्वरूप को समझने का प्रयास कभी नहीं किया। और पूर्वोक्त के परिणाम स्वरूप, द्वितीयत: सम्बन्ध या आरोप (attribution, ascription) की व्याधि जिसके अनुसार इन ऋषियों तथा अन्य ऋषियों के ग्रन्थ किन्हीं अर्वाक्कालीन अज्ञातनामा व्यक्तियों के द्वारा रचित घोषित किये गये हैं, जो (अज्ञात व्यक्ति) अपने को उन मिथिकल (काल्पनिक) ऋषियों के रूप में प्रचारित (ascribed, attributed) करते हुये कहे गये हैं।

निम्नलिखित उदाहरणों का उल्लेख करना रुचिकर होगा—

१. प्रो० मैक्समूलर (१८६० ई०) हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर में लिखता है—

(क) 'प्रथम (प्रातिशाख्य) शौनक से सम्बन्धित है'...पृष्ठ १३५।

(ख) 'कात्यायन से सम्बन्धित अनुक्रमणी'.....पृष्ठ २१५।

२. प्रो० ए० ए० मैक्डानल (१९०४ ई०) स्वसम्पादित पुस्तक के मुख पृष्ठ पर लिखता है—

'शौनक से सम्बन्धित बृहद्देवता'।

३. प्रो० एल० डी० बार्नेट (१९०७) 'ब्रह्म नॉलेज' (पृष्ठ ११) में लिखता है—

''ब्रह्मसूत्र परम्परा से दो कल्पित ऋषियों बादरायण और व्यास में से किसी एक से सम्बन्धित।''

४. प्रो० मौरिस ब्लूमफील्ड (१९१६ ई०) 'ऋग्वेद की पुनरुक्तियाँ' (पृष्ठ ६३४) में लिखता है—

'कात्यायन से सम्बन्धित सर्वानुक्रमणी के कथन'।

५. प्रो० जूलियस जॉली (१९२३ ई०) अर्थशास्त्र के संस्करण की अपनी भूमिका (पृष्ठ ४७) में लिखता है—

''ग्रन्थ से कौटिल्य या चाणक्य का सम्बन्ध होने का पूर्णत: हेतु वे कल्पित कथायें हैं जो उस कल्पित महामन्त्री के सम्बन्ध में प्रचलित थीं जो राजनीति कला का आचार्य एवं सर्जक और नीति विषयक सम्पूर्ण 'प्लवमान ज्ञान[५६] का' संकलयिता समझा जाता था।''[५७]

६. प्रो० ए० बी० कीथ (१९२४ ई०) संस्कृत नाटक में लिखता है—

''शिलाली और कृशाश्व से सम्बन्धित नटों की पाठ्यपुस्तकें (नटसूत्र)''....पृष्ठ ३१।

७. प्रो० एम० विण्टरनित्ज़ (१९२५ ई०) 'सम् प्रॉबलम्स् ऑफ इण्डियन लिटरेचर' में लिखता है—'कौटिल्य से सम्बन्धित अर्थशास्त्र'।

और पुन: (१९२७ ई०) अपने 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर' में

Scanned by CamScanner

लिखता है—

(क) जो गान (ऋग्वेद संहिता के सूक्त) काल के अत्यन्त पृथक् अन्तरालों में रचे जा चुके थे, वे किसी एक संग्रह के रूप में जोड़ लिये गये और प्रागतिहासिक काल के प्रसिद्ध पुरुषों के साथ सम्बन्धित कर दिये गये (पृष्ठ ५७)।

(ख) ऋग्वेद प्रातिशाख्य शौनक से सम्बन्धित है, जो आश्वलायन का गुरु समझा जाता (पृष्ठ २८४)।

(ग) वाजसनेयी प्रातिशाख्य सूत्र कात्यायन से सम्बन्धित (पृष्ठ २८४)।

८. प्रो० ए० बैरीडेल कीथ 'इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली' के खण्ड ४ सं० १ में प्रकाशित अपने लेख (१९२८ ई०) 'न्यायप्रवेश का ग्रन्थ कर्तृत्व' में लिखता है—

'कणाद' लेखक जिससे वैशेषिक सूत्र सम्बन्धित हैं।

९. प्रो० डब्लू० कैलेण्ड पञ्चविंश ब्राह्मण के अंग्रेजी अनुवाद की अपनी भूमिका (१९३१ ई०) में (पृष्ठ ४) लिखता है—'द्राह्यायण से सम्बन्धित'।

अब उनकी छत्रछाया में रहने वालों के कुछ उद्धरण—

१०. सर एस० राधाकृष्णन् भगवद्गीता के अपने भूमिकात्मक निबन्ध (पृष्ठ १४) में लिखता है (१९४८ ई०)—

''हम गीता के लेखक को नहीं जानते हैं। लगभग वे सभी पुस्तकें जो भारत के प्राचीन साहित्य से सम्बन्धित हैं, अज्ञातनामा लेखकों की हैं। गीता का ग्रन्थ-कर्तृत्व व्यास से सम्बन्धित है, जो महाभारत का पौराणिक संग्रहकर्त्ता है।''

११. प्रो० अल्तेकर (१९४९ ई०) लिखता है—

''प्राचीन भारत में लेखक प्रायः अज्ञात रहना ही पसन्द करते थे और अपने ग्रन्थों को दिव्य अथवा अर्धदिव्य पुरुषों से सम्बन्धित करते थे।'' (स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन् एन्शिएण्ट इण्डिया, पृष्ठ २)।

१२. श्री मनोमोहन घोष (१९५१ ई०) नाट्य शास्त्र के अपने अंग्रेजी अनुवाद के शीर्षक पृष्ठ पर लिखता है—''भरत मुनि से सम्बन्धित नाट्यशास्त्र।''

हजारों वर्षों तक सतर्कता से सुरक्षित भारतीय परम्परा के विरुद्ध ये चतुरतापूर्ण फुसलाने वाली उक्तियाँ इस देश के बहुत से शिक्षित मनुष्यों के मस्तिष्क में अपने प्राचीन ऋषियों के अस्तित्व और उनके ग्रन्थों की प्रामाणिकता के विषय में सन्देह उत्पन्न करने में सफल हो गयी हैं। इस छद्म प्रचार से की गयी धूर्तता की सीमा इस तथ्य से आंकी जा सकती

Scanned by CamScanner

है कि सर एस० राधाकृष्णन् जैसे उत्तरदायी व्यक्ति भी पाश्चात्त्य प्राच्य विद्याविदों के पूर्णतः असम्बद्ध और अनैतिहासिक विचारों को बिना किसी प्रश्न के स्वीकार करने के लिये बाधित हो गये हैं, बल्कि वे उनके साथ यह घोषणा करने में सम्मिलित हो गये हैं कि सम्पूर्ण भारत राष्ट्र असत्यवादियों का राष्ट्र था।

(इ) भारत में आर्यों के देशान्तरण के अत्यन्त काल्पनिक और आधार हीन सिद्धान्त को प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार भारत, मिश्र आदि के प्रथम अभिषिक्त राजा मनु; मनु के तेजस्वी पुत्र इक्ष्वाकु; शकुन्तला के तेजस्वी पुत्र चक्रवर्ती भरत; गङ्गा की धारा को मोड़ने वाले भगीरथ; जिसके कारण पवित्र यज्ञिय भूमि कुरुक्षेत्र नाम से विख्यात हुई, वह कुरु; दशरथ के पुत्र राम और अनेक दूसरे राजाओं का अस्तित्व भी पूर्णतः नकारा जा रहा है।

(ई) [वह] वैदिक ग्रन्थों के सर्वथा अशुद्ध अनुवाद और वैदिक संस्कृति के मिथ्या प्रस्तुतीकरण के लिये उत्तरदायी था।

(उ) कम से कम इण्डो-यूरोपीय समूह की भाषाओं की जननी के रूप में संस्कृत भाषा को स्वीकार करने की अनुमति नहीं दी, जैसा कि सर्वप्रथम फ्राञ्ज बॉप ने बड़ी योग्यता से प्रतिपादित किया था और प्राचीन भारतीय लेखकों ने भी बहुधा उल्लेख किया था।

हम इस सारे के लिये दुःखी नहीं हैं क्योंकि संस्कृत अध्ययन के ऐसे पक्षपाती विदेशी अन्वेषकों से इससे अधिक की आशा नहीं की जा सकती थी।

इन संक्षिप्त टिप्पणियों द्वारा हम गम्भीरता से प्रार्थना करते हैं कि—भारतवर्ष के प्रत्येक शिक्षित और विचारशील मनुष्य में सत्य का प्रकाश उदित हो, जिससे राजनैतिक और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के इन दिनों में वह पाश्चात्त्य बौद्धिक दासता के जुए को उतार फेंके।

पादटिप्पणियाँ

१. इस पुस्तक में उसने 'भारत-जर्मन परीवार को भारत से व्युत्पन्न' किया है। देखिये—'ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' लेखक आर० डब्लू० फ्रेजर, लण्डन, पृ० ५, टि० २, तृतीय आवृत्ति, १९१५।

२. 'ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर' लेखक विण्टरनित्ज, अंग्रेजी अनुवाद, भाग प्रथम २० (१९२७) में उद्धृत।

३. पूर्ववत्—पृष्ठ २६६।

४. पूर्ववत्—पृष्ठ २६७। न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग १, क्रामांक १, अप्रैल १९३८, पृ० ५९ पर हेन्रिश जिमर का लेख भी देखें। अनुवाद है 'उसकी वृद्धावस्था की सान्त्वना'। इस उद्धरण का मूल 'परेर्गा एत् परालिपोमिना' भाग २, पृष्ठ ४२७, १८५१ में है।

Scanned by CamScanner

५. अगस्त १९२३ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रदत्त भाषण, १९२५ में प्रकाशित 'सम प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन लिटरेचर' पृष्ठ ३।

६. सभी सैमेटिक विश्वासों (धर्मों) में असहिष्णुता स्थायी रूप में अवस्थित थी और वही क्रूसेड (गृहयुद्ध) का कारण बनी। शोपनहार से सौ वर्ष पूर्व 'वाल्तेर' भी ईसाई धर्मगुरुओं के क्रोध का शिकार हुआ था। उसने एक लेख नीतियों और राष्ट्रों की चेतनता पर लिखा था जिसने प्रत्येक को क्रुद्ध कर दिया, क्योंकि उस [लेख] ने सत्य को कहा था। उसने प्राचीन भारतीय, चीनी व ईरानी संस्कृतियों को उच्च बताया था और यहूदियत एवं ईसाईयत को तुलनात्मक दृष्टि से निम्न स्थिति में रखा था। ऐसी देशद्रोही अभिव्यक्ति के लिये उसे कैसे क्षमा किया जा सकता था? वह दूसरी बार फ्राँस की सरकार के द्वारा देश से बहिष्कृत किया गया। (देखें 'द स्टोरी ऑफ फिलासफी' लेखक विल ज्यूरां, पृष्ठ २४१)।

७. न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी, अप्रैल १९३८, पृष्ठ ६७।

८. 'एन इण्ट्रोडक्शन टु मिथोलाजी', न्यूयार्क (प्रकाशन तिथि अनिर्दिष्ट)।

९. मनुस्मृति १।२१।

१०. जिनेसिस २।१०।

११. 'कि-यहूदी जाति इन सभी जातियों से पुरानी है।' फ्रेगमेण्ट्स ऑफ मेगस्थनीज, पृष्ठ १०३।

१२. 'आर्क विशप अशर का प्रसिद्ध कालक्रम जो बहुत समय तक मनुष्यों की कल्पनाओं पर छाया रहा।' हिस्टोरियन्स हिस्ट्री ऑफ वर्ल्ड, खण्ड १, पृष्ठ ६२६, सन् १९०८।
डंकन मैक्नाटन अपनी 'ए स्कीम ऑफ इजिप्शियन क्रोनोलोजी' लन्दन १९३२ में लिखता है—
''यह देखने में बड़ा आश्चर्य लगता है कि विल्किन्सन ने मीनस (अथवा मनु, मिश्र का प्रथम राजा) को अधिक से अधिक २३२० में रखा, किन्तु यह स्मरणीय है कि १८३६ में भी आंग्लभाषी विद्वान् अशर के बाइबलीय कालक्रम के ऐन्द्रजालिक प्रभाव के अधीन थे। बाइबल में प्रकाशित तिथियाँ पवित्र समझी जाती थीं और उनका निरादर करना निश्चित रूप से पाप समझा जाता था (पृष्ठ ६)।''

१३. 'एण्टिक्विटी ऑफ सिविलाइज्ड मैन', जनरल ऑफ दि रायल एन्थ्रोपोलोजीकल इन्स्टिट्यूट ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, खण्ड ६०, जुलाई-दिसम्बर, १९३०।

१४. 'संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी' सम्पादक एम० मोनियर विलियम्स, आमुख, पृष्ठ ९, १८९९।

१५. एमिनेण्ट ओरियण्टालीस्ट, मद्रास, पृष्ठ ७२।

१६. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल से प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद, १८४७।

१७. निरुक्तियों और शब्दार्थ विद्याविषयक ग्रन्थ।

१८. यह बहुत ही रुचिकर रहेगा कि राथ ने अपने निरुक्त संस्करण की भूमिका में ऐतरेय ब्राह्मण के एक सन्दर्भ का अशुद्ध अनुवाद दिया है, जिसने गोल्डस्टुकर को उपहासपूर्ण टीका करने के लिये निमन्त्रित किया (तुलना करें 'पाणिनि' पृष्ठ १९८)।

१९. अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी प्रोसिडिंग्स, अक्टूबर १८६७।

२०. लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ मैक्समूलर, लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, १९०२, सी० एच० आई० खण्ड ६ (१९३२) में उद्धृत।

Scanned by CamScanner

२१. हिस्ट्री ऑफ एन्शियण्ट संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३२, १८६०।

२२. चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप, २ संस्करण, १८६६, पृष्ठ २७।

२३. इण्डिया, ह्वाट कैन इट टीच अस्, लेक्चर ४, पृष्ठ ११८, १८८२।

२४. 'चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप', जिनेसिस एण्ड जेन्दा अवेस्ता, पृष्ठ १४७।

२५. पूर्ववत्। दि माडर्न पारसीस, पृष्ठ १८०। उत्तरकालिक विश्वासों के सिद्धान्तों तक पूर्वकालिक धर्म की अनजाने पहुँच के बारे में मैक्समूलर जैसे वैज्ञानिक मस्तिष्क वाला व्यक्ति ही लिख सकता है! आश्चर्यजनक समानता होने पर भी, ईसाई मत का अन्य प्राचीन धर्म से कुछ भी ग्रहण करने का विचार एक पक्षपाती ईसाई मस्तिष्क के लिए कितना प्रतिकूल है! और इन्हीं तथाकथित निष्पक्ष शिक्षकों ने सूक्ष्मतम बहाने के आधार पर भारतीय साहित्य का यूनान से ग्रहण करने का सम्बन्ध लगाने में संकोच नहीं किया, अर्थात् जहाँ समानता लेशमात्र भी स्पष्ट नहीं है, वहाँ खींचतान कर निकाली गई है।

२६. तुलना कीजिये—विण्टरनित्ज से उद्धरण, पूर्व पृष्ठ २। सम्भवत: विण्टरनित्ज जैकलियट का संकेत करता है।

२७. यह अंग्रेज नौकर शाही द्वारा निर्मित अंग्रेज-मुस्लिम गठजोड़ का स्पष्ट संकेत है। और उत्तरकाल में 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' सदृश ग्रन्थ एवं अन्य अनेक ग्रन्थों में प्रत्यक्ष है। यह फ्राँस के लेखक 'गारसे दि तस्सि' के इन ग्रन्थों में भी स्पष्ट है—ले आंतेर् एन्दुस्तानि ए लेयर् उवराज (भारतीय लेखक और उनकी कृतियाँ), द्वितीय संस्करण, पैरिस १८६८ और इस्त्वार द ला लीतेराच्युएर एन्दु ए हिन्दुस्तानि (हिन्दुस्तानियों के साहित्य का इतिहास), खण्ड ३, द्वितीय संस्करण, पैरिस, १८७०-७१।

२८. दि हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, सामान्य संस्करण, १९१४, पृष्ठ १८९, पादटिप्पणी। तुलना कीजिये पृष्ठ ३०० की पादटिप्पणी।

२९. संवत् १९२६ में उसने 'दि भगवद्गीता' नामक एक लेख लिखा।

३०. 'इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू', न्यूयार्क, १९०२, पृष्ठ १४६। अपि च तु० उसकी 'रिलिजन्स ऑफ इण्डिया' (भारत के धर्म) पृष्ठ ४२९, बोस्टन, १८९५।

३१. कृष्ण चरित, तीसरा परिच्छेद, ऊपर हिन्दी मूलपाठ का अंग्रेजी भाषान्तर है।

३२. 'पाणिनि, हिज प्लेस इन् संस्कृत लिटरेचर' इलाहाबाद संस्करण, पृष्ठ २००, १९१४।

३३. पूर्ववत्, पृष्ठ २००।

३४. पूर्ववत्, पृष्ठ १९५।

३५. पूर्ववत्, पृष्ठ १९७।

३६. पूर्ववत्, पृष्ठ २०३।

३७. पूर्ववत्, पृष्ठ० २०३।

३८. पूर्ववत्, पृष्ठ २०४-२०५।

३९. माडर्न इण्डिया एण्ड दि इण्डियन्स (आधुनिक भारत और भारतीय), ले० मोनियर विलियम्स, तृतीय संस्करण, १८७९, पृष्ठ २६।

४०. पूर्ववत्, पृष्ठ २६२।

Scanned by CamScanner

४१. 'इण्डियन विज्डम', पृष्ठ १४३।

४२. द क्रिश्चियन इण्टेलिजेन्सर, कलकत्ता, मार्च १८७०, पृष्ठ ७९।

४३. ए० एफ० आर० एच०, लाला लाजपतराय द्वारा लिखित 'आर्यसमाज', पृष्ठ ४२ पर उद्धृत।

४४. सम प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन लिटरेचर, कलकत्ता, पृष्ठ ६१, १९२५।

४५. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, पृष्ठ ७९, १९२७।

४६. हमारी पुस्तक 'साइण्टिफिक आब्जर्वेशन ऑफ दि एशियन्स आर्यन्स' जो उनकी विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों को प्रकट करती है, शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

४७. 'ए हिस्ट्री ऑफ साइन्स', चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ ८, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस, १९४८।

४८. रिप्ले का 'बिलीव इट् आर नाट', भाग प्रथम, पृष्ठ १४, २६वाँ संस्करण, पाकेट बुक संयुक्त, न्यूयार्क।

४९. देखें 'एथिक्स ऑफ इण्डिया', ले० ई० डब्लू० हाप्किन्स, आमुख पृष्ठ १०-११, न्यूहेवन, १९२४।

५०. मनु० २।२०।

५१. मोनियर विलियम्स अपनी भेंट के विषय में स्वयं लिखता है—

दयानन्द सरस्वती.....मेरा उनसे बम्बई में १८७६ में परिचय हुआ और मैं उनके सुन्दर मुख एवं देह से बहुत प्रभावित हुआ। वहाँ मैंने उनको आर्यजाति की धार्मिक उन्नति पर वाक्पटुतापूर्ण भाषण देते हुए सुना। उन्होंने ओ३म् के गम्भीर प्लुत नादपूर्वक वरुण सूक्त (४।१६) से अपना भाषण आरम्भ किया।

ब्राह्मणिज्म एण्ड हिन्दूइज्म, मोनियर बिलियम्स, चतुर्थ संस्करण, १८९१, पृष्ठ ५२९।

मैंने अपनी एक भेंट में उनसे धर्म की परिभाषा पूछी, तो उन्होंने संस्कृत में उत्तर दिया। सत्य और न्याय का ग्रहण और सभी पूर्वाग्रह एवं पक्षपात का त्याग धर्म है, अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्त प्रमाणों से सत्य की पक्षपात रहित परीक्षा धर्म है। पूर्ववत्, पृष्ठ ५३०।

५२. हिस्ट्री आफ प्रिमुसलमान इण्डिया (मुसलमान पूर्व भारत का इतिहास), खण्ड २, वैदिक इण्डिया भाग १, १९३७ ई०, पृष्ठ १४५।

५३. आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, दिसम्बर १९४१, भाग २, पृष्ठ ६४, प्रकाशित १९४६।

५४. द क्रेडल आफ इण्डियन हिस्ट्री, पृष्ठ ३, अडयार पुस्तकालय, मद्रास, १९४७।

५५. जे० एच० आर० एस०, खण्ड २०, पृष्ठ १८७।

५६. तुलना करो ए० एल० बाशम—कुछ ही यूरोपीय विद्वान् प्रो० अल्तेकर (पृष्ठ १९) से सहमत होंगे कि—ऋग्वेद की तिथि २५०० ईसा पूर्व है (जे० आर० ए० एस०, १९५० ई०, भाग ३-४, पृष्ठ २०२)।

५७. जानीस मेयर ने अपनी Uber das wesen der altindischen Rechtsschriften ''उबेर दास वेजन देर अल्तिन्दिश्शेन रेच्तश्रिफ्तेन'' में ''प्लवमान ज्ञान'' अथवा प्लवमान पद्यों के सिद्धान्त का निर्दयता से प्रत्यालोचन किया। परन्तु बहुत सी समस्याओं के विषय में लेखक से असहमत पी० वी० काणे पद्यों के प्लवमान समूह की अविद्यमानता को स्वीकार करता है (धर्मशास्त्र का इतिहास, परिवर्धन, पृ० ७, १९३०)।

Scanned by CamScanner